कृष्ण और जल

मुरलीधर वैष्णव

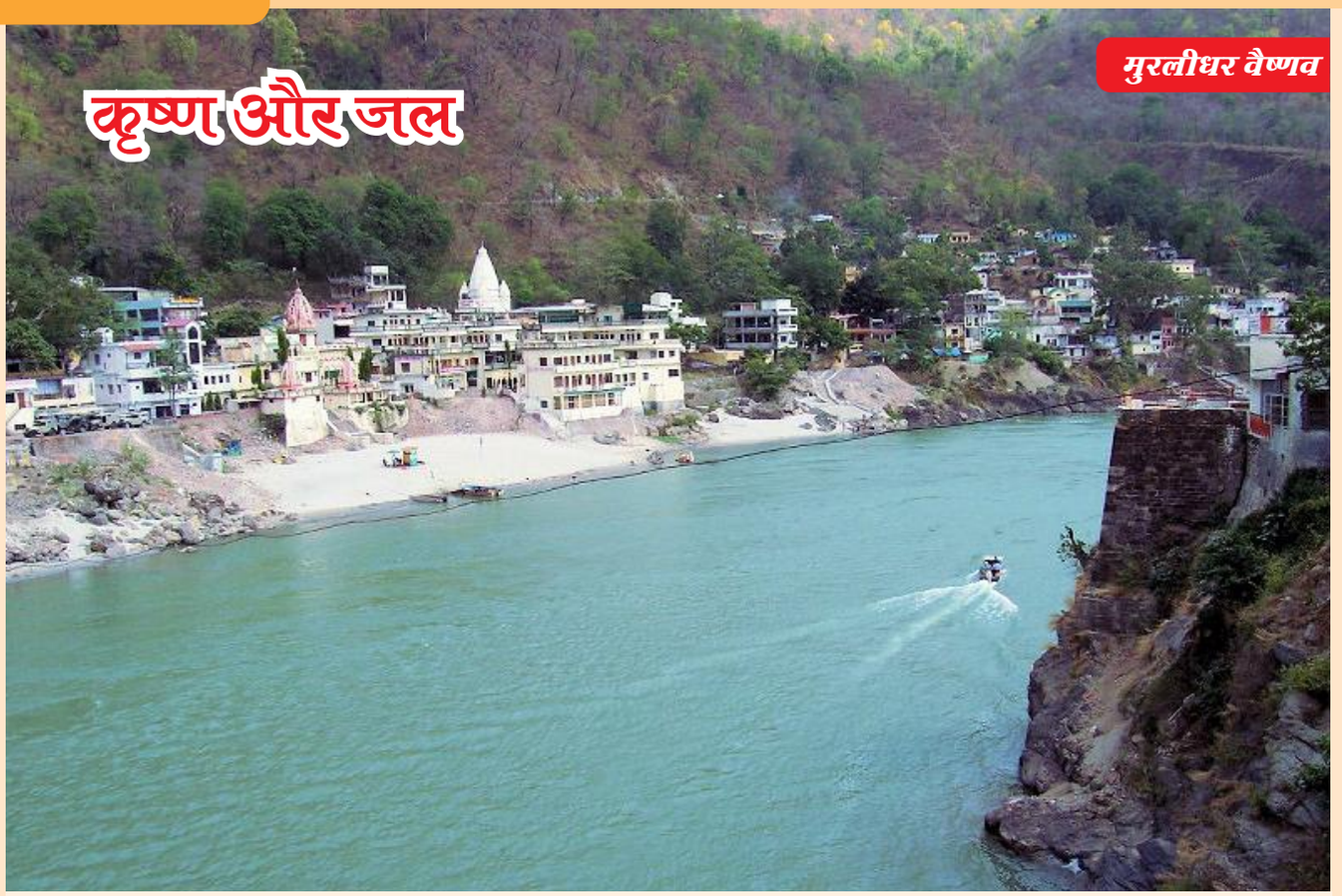

वेदों में जल की स्तुति प्राण तत्व के रूप में की गई है। अथर्व वेद में कहा गया है कि जल जो रेगिस्तान में है, जो तालाब से घड़े में भरकर लाया गया है, वर्षा से प्राप्त है, ग्लेशियर से पिघलकर नदियों में बहता है और उसमें भी गंगा जल को सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया (जिसमें कभी कीड़े नहीं पड़ते)। ये सभी जल हमारा कल्याण करें। हमें समृद्धि प्रदान करें।

इससे पहले कि विष्णु एवं उनके पूर्णावतार कृष्ण के जल के गहरे संबंध के बारे में विवेचना की जाये यह उल्लेख समीचीन होगा कि जल के बारे में वेदों, पुराणों एवं स्मृतियों में इसकी महिमा का वर्णन किस प्रकार किया गया है।

वेदों में जल की स्तुति प्राण तत्व के रूप में की गई है। अथर्व वेद में कहा गया है कि जल जो रेगिस्तान में है, जो तालाब से घड़े में भरकर लाया गया है, वर्षा से प्राप्त है, ग्लेशियर से पिघलकर नदियों में बहता है और उसमें भी गंगा जल को सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया (जिसमें कभी कीड़े नहीं पड़ते)। ये सभी जल हमारा कल्याण करें। हमें समृद्धि प्रदान करें।

जल की पवित्रता का आधार विभिन्न स्त्रोतों को मानते हुए अग्नि पुराण (155/5-6) तथा गरूड़ पुराण (205/113-114) में कहा गया है कि कुएं के जल की अपेक्षा सरोवर का, सरोवर से अधिक पवित्र जल झरने का, झरने से श्रेष्ठ जल नदियों का एवं इनमें सर्वाधिक पवित्र जल तीर्थों का बतलाया गया है। तांबे के पात्र में तुलसीदल युक्त शुद्ध आचमन-जल तन, मन, मस्तिष्क एवं हृदय के लिए कल्याणकारी बतलाया गया है। पुराणों में जल की महत्ता उनमें अधिक अवधि विशेष तक जल विद्यमान रहने के अनुरूप प्रतिपादित की गई। मत्स्यपुराण के अनुसार-

''शरद काले स्थितं यत स्यात दुक्त
फलदायकम्
वाजपेयति राजा मयां हेमन्ते शिशिर।
स्थितिम् ग्रीष्मपि तस्थितं तीय
राजसूयाद विशिस्यते।।

अर्थात् जिस जलाशय में केवल वर्षा जल ही रहता है वह अग्निस्त्रोत यज्ञ का सीमित अवधि का फल देने वाला है। हेमंत व शिशिर काल तक रहने वाला यह जल क्रमशः वाजपेय और अतिराम नामक यज्ञ का फल देता है। बसंत काल तक टिकने वाला जल अश्वमेध यज्ञ के समान फलदायक एवं ग्रीष्म ऋतु तक यदि जिस जलाशय में जल ठहर जाये तो उसे बनाने वाले को राजसूय यज्ञ का फल मिलता है। मनुष्य-समाज की प्रारंभिक अवस्था में परिवार व सामाजिक सत्ता मातृ-प्रधान थी। इसलिए जल को जीवन जननि भी कहा गया। ऋग्वेद (6.50.7) के अनुसार-

''ओमानापो मानुषो रमृक्तं धात
तोकाय तनयाय शंयो।
यूथं हिष्न भिषजो मातृ तमा विश्वस्य
स्यातुर्जगतो जमित्री।।

अर्थात् हे जल! मनुष्य के लिए क्षति रहित अन्न को पुत्र तथा पौत्र के लिए प्रदान करो। शांति के लिए पृथक-पृथक स्थावर एवं जंगम जगत की जननि हो। हमारे विकारों को नष्ट करो।

ऋग्वेद (5.83.4) के अनुसार जीवों की उत्पत्ति और पालन का समस्त चक्र जल के इर्द-गिर्द घूमता है। पर्जण्य अर्थात बरसने वाले मेघ पृथ्वी की अपने जल से रक्षा करते हैं। इसे सींचते हैं। तब वर्षा के लिए हवाएं चलती हैं। बिजलियां गिरती हैं। वनस्पतियां अंकुरित-विकसित होती हैं। अंतरिक्ष जल की बूंदों को टपकाता है। भूमि संसार हित के लिए सक्षम हो जाती है। डार्वीन ने आगे जाकर जीवों की उत्पत्ति व क्रमिक विकास के सिद्धांत को इसी आधार पर स्वीकारा।

ऋग्वेद के अनुसार पर्जण्य अर्थात बरसने वाले मेघ अपने जल से पृथ्वी की रक्षा करते हैं।

अथर्व वेद दो कदम आगे बढ़ कर जल महिमा का वर्णन करता है-

"हिरण्य वर्णा शुचयः पावका
यासू जातः सविता या स्वग्निः।
या अग्निद्धिरे सुवर्णास्ता न आपः शं
स्योना भवन्तु।।

अर्थात् जो जल सोने के समान आलोकित होने वाले रंग से सम्पन्न, अत्यधिक मनोहर शुद्धता प्रदान करने वाला है, जिससे सविता देव व अग्निदेव उत्पन्न हुए हैं, जो श्रेष्ठ रंग वाला अग्नि गर्भा है, वह जल हमारी व्याधियों को दूर करके हम सभी को सुख और शांति दें।

अथर्व वेद व वृहस्पति स्मृति में जल को प्रदूषित करने वालों व तालाबों, नदियों, कुओं के लिए जल मार्ग को अवरूद्ध करने वाले को गंभीर रूप से दंडित करने का उल्लेख किया है। वृहस्पति स्मृति (62) में जल संरक्षण व उसकी शुद्धता कायम रखने वाले को महा पुण्य का भागी बतलाते हुए यह भी कहा गया है कि जो बावड़ी, कुओं, तालाबों, वनों-उपवनों का क्रमशः जीर्णोद्धार एवं पोषण करता है उन्हें उतना ही पुण्य फल मिलता है जितना कि उनके निर्माण करने वालों को-

"वापी कृप तड़ागानि उद्यानोध्यानो।
पुनः संस्कार कर्त्ता च लभते मौलिक
फलं।।"

यूनानी परंपरा के दार्शनिक वैज्ञानिक थेलिस तथा चीन के महान संत लाओत्से ने जीवन में जल की दिव्य महत्ता का समर्थन किया है। सिंधु घाटी सभ्यता में जल देव की पूजा, जल-प्रबंधन परिपाटी सदा उच्च स्तर की रही है।

कंस कारावास में आधी रात को जन्म के कोई पन्द्रह-बीस मिनट की आयु के शिशु के रूप में उनके पिता के सिर पर रखी टोकरी में विराज कर अंधेरी-तूफानी रात में वेगवती यमुना को पार कर गोकुल पहुंचना कृष्ण जीवन की पहली जल यात्रा थी जो शैशव काल में ही बिना रोए, हंसते हुए, पूर्ण शौर्य व साहस के साथ पहुंचना आज हमें बहुत कुछ सिखा जाता है। कृष्ण का जल से गहरा नाता रहा है। उनके पैरों के तलुए में मत्स्य, शंख, कलश और पद्म (कमल) के चिन्ह जल से ही संबंधित रहे हैं।

गत महाप्रलय जल प्रलय था, हिन्दू धर्म शास्त्रों के अनुसार उक्त जल-प्रलय में यदि कुछ बचा था तो प्रयाग में संगम के किनारे अक्षय वटवृक्ष एवं जल के भीतर तपस्यारत मार्कण्डेय ऋषि थे। कृष्ण ने प्रकट होकर मार्कण्डेय से वरदान मांगने को कहा तब निस्पृह मार्कण्डेय ऋषि ने केवल यह प्रार्थना की-

"करारविन्दे पदार्विन्दम, मुखार्विन्दे
विनिवेश्यंतम्।
वटस्य पत्रं पुटे शयानम्, बाल मुकुन्दं
मनसा स्मरामि।।"

अर्थात् हे प्रभु आपके हाथ, पैर एवं श्री मुख कमल के समान सुशोभित हैं। मेरी प्रार्थना है कि आप इस अक्षय वटवृक्ष के पत्ते पर एक पैर का अंगूठा चूसते हुए नग्न शिशु के बाल मुकुन्द रूप में मुझे दर्शन दें। उन्होंने और कोई इच्छा प्रकट नहीं की। तभी से कृष्ण बालमुकुन्द कहलाए। जल से इतना लगाव था कृष्ण को कि वे जल प्रलय में भी भक्तों की सुध लेना नहीं भूले।

यमुना में स्नान व अपने गाय-बछड़ों को भी नहलाना उनका दैनिक कार्यक्रम रहा। उन्हें यमुना से इतनी अधिक प्रीति थी कि बृज छोड़ने के बाद उनके विरह में सूख रही यम की बहन यमुना से विवाह कर उसे अपनी आठ प्रमुख रानियों में सम्मिलित किया। यमुना जल में गोपियों द्वारा नग्न स्नान करने पर उनके वस्त्र हरण का प्रसंग यह तात्विक सीख देता है कि जल, आकाश, सूर्य, वायु एवं पृथ्वी चैतन्य तत्व हैं। इस कदर उनके सामने नग्न स्नान करना न केवल अमर्यादित हैं बल्कि इन शाश्वत चैतन्य तत्वों का अनादर भी है।

जब कालियानाग के विष से यमुना का जल विषमय हो गया। लोग व गायें आदि उसका जल पीकर मरने लगे, तब कृष्ण ने खेल-खेल में अपनी गेंद को ढूंढने के बहाने यमुना की गहराई में अपनी दूसरी जलयात्रा की। कालिया नाग का फन कुचल कर उसे यमुना छोड़ कर जाने को विवश किया।

एक बार नंद बाबा भ्रमवश जल्दी प्रातः के स्थान पर आधी रात में ही यमुना में स्नान करने के लिए डुबकी लगा बैठे। जल तत्व की चैतन्यावस्था का अनुमान हम इसी तथ्य से लगा सकते हैं कि जल देवता वरूण देव ने अपने प्रहरियों को इस कदर सर्वत्र तैनात कर रखा था कि जल का भी यदि उसके रात्रि विश्राम के समय कोई व्यवधान उत्पन्न करें तो उसे पकड़ कर उनके समक्ष पेश किया जावे। नंद बाबा को भी वरूण देव के प्रहरियों ने आधी रात में यमुना जल के आराम में दखल देने से पकड़ लिया। वे उन्हें समुद्र में विराजमान वरूण देव के पास ले गये। कृष्ण को पता चला तो स्वयं उन्होंने समुद्र जल के भीतर जाकर वरूणदेव से प्रार्थना की। नंद बाबा ने अपनी त्रुटि के लिए क्षमा चाही। इस प्रकार कृष्ण नंद बाबा को छुड़ा कर लाए। कृष्ण ने इस जलयात्रा से दो संदेश दिये। प्रथम यह कि पेड़-पौधों की तरह कुएं, तालाब, नदी आदि के चैतन्य जल को भी कुसमय अर्थात् आधी रात में परेशान नहीं करना चाहिए। द्वितीय यह कि मुसीबत में पड़े अपने माता-पिता-परिजन आदि की सहायतार्थ व्यक्ति को हर समय तैयार रहना चाहिये।

उज्जैन के संदीपनी आश्रम में

ऋग्वेद (5.83.4) के अनुसार जीवों की उत्पत्ति और पालन का समस्त चक्र जल के इर्द-गिर्द घूमता है। पर्जण्य अर्थात बरसने वाले मेघ अपने जल से पृथ्वी की रक्षा करते हैं। इसे सींचते हैं। तब वर्षा के लिए हवाएं चलती हैं। बिजलियां गिरती हैं। वनस्पतियां अंकुरित-विकसित होती हैं। अंतरिक्ष जल की बूंदों को टपकाता है। भूमि संसार हित के लिए सक्षम हो जाती है। डार्वीन ने आगे जाकर जीवों की उत्पत्ति व क्रमिक विकास के सिद्धांत को इसी आधार पर स्वीकारा।

यूनानी परंपरा के दार्शनिक वैज्ञानिक थेलिस तथा चीन के महान संत लाओत्से ने जीवन में जल की दिव्य महत्ता का समर्थन किया है। सिंधु घाटी सभ्यता में जल देव की पूजा, जल-प्रबंधन परिपाटी सदा उच्च स्तर की रही है।

कृष्ण-बलराम, सुदामा आदि शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। एक बार यज्ञ के लिए लकड़ी की ढेरी लाने के लिए कृष्ण-सुदामा जंगल में गये। वहां वर्षा हो गई। सुदामा ब्राह्मण था। भूख ज्यादा लगने से उसने कृष्ण के हिस्से के भी चने खा लिए। आश्रम में लकड़ी की ढेरी लेकर लौटे तो गुरू संदीपनी मुनि के पूछने पर सुदामा ने गलती स्वीकार की कि उन्होंने कृष्ण के हिस्से के भी चने खा लिए थे। संदीपनी यह सुनकर क्रोध में कांपने लगे। उसी समय कमंडल से अभिमंत्रित जल को हथेली में लेकर सुदामा पर डाला। उसे श्राप दिया कि इस पाप के लिए उसे आजीवन दरिद्र बन कर रहना होगा।

पीछे आ रहे कृष्ण यह सब सुनकर गुरू संदीपनी से सुदामा को क्षमा कर श्राप वापस ले लेने की प्रार्थना करने लगे। संदीपनी बोले कि कृष्ण! कर्म की गति बड़ी कठोर है। श्राप वापस नहीं लिया जा सकता। यहां प्रश्न यह है कि श्राप व कर्म गति की कठोरता के बीच अभिमंत्रित जल की शक्ति भी कितनी प्रबल रही होगी। संदीपनी मुनि का एक मात्र पुत्र समुद्र में स्नान करते समय गुम हो गया था। कृष्ण ने गुरू दक्षिणा के रूप में उनके पुत्र को खोज कर लाने का वचन दिया। वे समुद्र जल के भीतर गहरे उतरे। वहां शंखासुर नामक राक्षस का वध कर संदीपनी पुत्र को जीवित लेकर आए। जलयात्रा का यह अद्भुत प्रसंग जहां गुरू दक्षिणा के महत्व पर प्रकाश डालता है वहीं कृष्ण का जल के भीतर उतरना उनका प्रीति कर खेल होना प्रदर्शित करता है।

मथुरा में कंस वध के बाद उसके ससुर महाबलि जरासंध को कृष्ण ने अठारह बार युद्ध में परास्त किया। फिर मथुरा में युद्धों के कारण खेती, व्यापार नष्ट होने से मथुरा छोड़ कर समुद्र के बीच द्वारिका बसाई व वहीं चैन से रहने लगे। प्रश्न है कि कृष्ण ने समुद्र जल के बीच ही द्वारिका क्यों बसाई। इसमें सुरक्षा कारणों के अलावा उनकी जल के प्रति प्रगाढ़ प्रीति भी परिलक्षित होती है।

कृष्ण जी द्वारा समुद्र के बीच बसाई गई द्वारका नगरी से उनकी जल के प्रति प्रगाढ़ प्रीति परिलक्षित होती है।

कृष्ण विष्णु के सोलह कलाओं के पूर्णावतार थे। क्षीर सागर के बीच शेष नाग की शैय्या को ही उन्होंने अपनी विश्रामस्थली क्यों चुना? पृथ्वी का 71 प्रतिशत भाग जल मग्न है। अपने शरीर में 60 प्रतिशत जल तत्व है। लेकिन मस्तिष्क में 85, रक्त में 79 व फेंफड़ों में 80 प्रतिशत जल होता है।

विष्णु पुराण के अनुसार पृथ्वी पर सात महाद्वीपों से घिरे सागर हैं। उनमें शाकद्वीप को जो सागर घेरे हुए वह दूध के समान क्षीरसागर है। जल से उनकी प्रीति का इससे बड़ा क्या उदाहरण होगा कि उन्होंने समुद्र मंथन वहीं आरंभ किया था। स्वयं वे कच्छप अवतार लेकर अपनी पीठ पर मंदराचल पर्वत को टिकाया। वासुकी नाग की रस्सी से एक छोर असुर व दूसरा छोर देवों ने पकड़ कर समुद्र मंथन किया। जल के मंथन से चौदह रत्न ऐरावत, कौस्तुभ मणि, कल्पवृक्ष, कामधेनु, अमृत-विष लक्ष्मी, रंभा आदि प्रकट हुए। जल के मंथन मात्र से ऐसी दिव्य वस्तुएं, विभुतियों का जन्म हो सकता है तो कहीं न कहीं इसमें जल की दिव्यता व महानता तो है ही। यदि जल अचेतन तत्व होता तो इतने दिव्य चैतन्य तत्व कैसे प्रकट होते। अगर हम दही से मक्खन निकालते हैं तब उसमें भी विद्यमान जल तत्व का ही कमाल होता है।

जल प्रलय में डूबी हुई पृथ्वी को मत्स्यावतार के माध्यम से बाहर निकालना, हिरण्याक्ष राक्षस द्वारा पृथ्वी को पाताल में ले जाकर मलमूत्र में डूबो देना व फिर भगवान द्वारा वराहवतार लेकर हिरण्याक्ष का वध कर पृथ्वी को बाहर निकाले जाने में भी जल तत्व ही प्रधान रहा है।

राजा जनक के दरबार में जब अष्टावक्र ने वरूण-पुत्र नंदी को शास्त्रार्थ में हरा दिया तब उन्होंने शर्त के अनुसार नंदी को जल में डूबो कर मार देना चाहा। उस समय नंदी ने कहा कि अष्टावक्र के पिता काहोड़ मुनि यद्यपि उससे (नंदी से) शास्त्रार्थ में हार गये थे लेकिन उसने उन्हें मारा नहीं बल्कि उनके पिता वरूणदेव द्वारा किये गये यज्ञ में उन्हें सम्मिलित कराने ले गये थे। नंदी ने समुद्र में जाकर काहोड़ मुनि को अष्टावक्र के सामने सकुशल प्रस्तुत किया। इतना ही नहीं जल का चमत्कार इस रूप में भी देखने को मिला जब नंदी ने अष्टावक्र को वरदान देकर समांग नदी में स्नान करा कर उनके शरीर की अष्टवक्रता स्थाई रूप से हटा दी।

यहां एक बात स्पष्ट की जाना आवश्यक है। इतिहासकार एवं तथाकथित बुद्धिवादी शास्त्र-पुराणों के प्रसंगों को प्रमाणिकता के अभाव में स्वीकार नहीं करते। लेकिन साथ ही यह भी सत्य है कि जब हम इतिहास को सुरक्षित व संरक्षित नहीं रख पाते हैं तब इतिहास को पुराण में बदलने में समय नहीं लगता। समुद्र पुल (भारत-श्रीलंका के बीच), द्वारिका नगरी व सरस्वती नदी के वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध होते हुए भी उक्त प्रसंगों के प्रति हम शंकालू होते हैं। विज्ञान तेजी से इनके प्रमाण जुटाने में लगा है। लेकिन उक्त प्रसंगों के कथ्य की प्रमाणिकता के स्थान पर उनमें अंकित दार्शनिक, आध्यामिक तात्विकता की ओर हमें अधिक ध्यान देना चाहिये। फिर विज्ञान की गति जारी है। आज संपूर्ण ब्रह्मांड का स्वरूप शिवलिंगानुसार अंडे की भांति होने उसमें ऊँ के ब्राह्मांड की आवाज होने तथा अन्य पराभौतिकी (मेटाफिजिकल) तत्वों की ओर वैज्ञानिकों के आकर्षण से हम मुख नहीं मोड़ सकते। शनै-शनै स्वयं विज्ञान और धर्म एवं वेद-पुराणों में अंकित तात्विक संदेशों के सामंजस्य को स्वीकारने के लिए तत्पर हो रहा है।

संपर्क करें

मुरलीधर वैष्णव

A–77, रामेश्वर नगर

बसनी 1st जोधपुर-342 005 (राजस्थान)

मो. 960776100